विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS(M)-16/84

वर्ष १३ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२७ • चैत्र पूर्णिमा [शक] • दि. १५-४-१९८४ • अंक १०

कैसे करें ?

कोई व्यक्ति किसी भी समाजमें जन्मा हो, शुद्ध धर्मकी सर्वमान्य बातें तो बचपनसे सुनता ही रहता है। हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख, जैन आदि भारतीय परंपराओं में जन्मे, पले हुए व्यक्तिका तो कहना ही क्या ! ईसाई अथवा मुस्लिम परिवारमें भी जन्मा हो तो भी धर्म के मूलभूत सिद्धान्त उसके लिए नये नहीं होंगे। अमान्य नहीं होंगे। शील-सदाचारका जीवन जीना चाहिए, मनको वश में करना चाहिए, मन को द्वेष, द्रोह, दुर्भावना आदि विकारोंसे विमुक्त रखना चाहिए; मनको स्नेह, सौमनस्य और सद्भावना आदि सद्गुणोंसे भरना चाहिए, यह सर्वमान्य सार्वजनीन धर्म की बातें तो वह बचपनसे सुनता ही रहता है। परन्तु इन उपदेशोंका लाभ कहाँ होता है ? श्रद्धा भक्तिसे अथवा बौद्धिक ज्ञानसे शुद्ध धर्म की यह सारी बातें स्वीकार कर लेनेवाला व्यक्ति भी व्यावहारके स्तर पर सफल नहीं होता। हर संप्रदायका व्यक्ति व्यवहारिक स्तर पर इन्हें करना तो चाहता है पर कठिनाई यही है कि करे कैसे ?

शुद्ध धर्मकी हर कड़ी एक दूसरेसे जुड़ी हुई है। शील-सदाचारका पालन करना चाहे तो मनको वशमें करना ही होता है। विकारोंके रहते मन वशमें कर भी ले तो वह कल्याणकारी साबित नहीं होता। क्योंकि मन विकार-विहीन न हो तो सद्गुण-संपन्न नहीं हो सकता। निर्मल मन सद्गुणोंसे भरे तो ही आत्म-मंगल और सर्वमंगल सधता है। यह सर्वमान्य नैसर्गिक नियम है। यही शुद्ध धर्म है जो कि सार्वजनीन है, सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है।

पर मानव जातिका बहुत बड़ा दुर्भाग्य रहा है कि जगतमें जब धर्म जागता है, कुछ समय के बाद किसी न किसी संप्रदायसे संयुक्त हो जाता है और जब-जब संप्रदायसे संयुक्त हो जाता है तब-तब शुद्ध नहीं रह सकता। संप्रदायका विष मंगलकारी धर्म की शुद्धताको नष्ट कर देता है। सांप्रदायिक धर्म ही बार-बार मानवी अमंगलका कारण बना है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में सुख-शांति बनाए रखने के लिए शील-सदाचारका जीवन जीना ही चाहिए। शरीर और वाणी से कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे समाजके अन्य प्राणियोंकी सुख-शांति भंग हो; उन्हें कष्ट पहुंचे। सामाजिक उत्तरदायित्वके अतिरिक्त स्वयं अपने भलेके लिए भी शील-सदाचारका जीवन जीना चाहिए। क्योंकि जब-जब समाजकी सुख-शांति भंग होगी तो इसका प्रभाव समाज के हर मनुष्य पर कमोबेश पड़ेगा ही। अतः उस पर भी परोक्षरूपसे पड़ेगा ही। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब-जब कोई व्यक्ति शील-सदाचार भंग करता है तो समाजकी ही हानि नहीं करता, प्रत्यक्ष रूपसे स्वयं अपनी भी बहुत गहरी हानि करता है। जब कोई व्यक्ति हिंसा करता है, चोरी करता है, व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है तो मनमें गहरा विकार जगाकर ही ऐसा करता है और हर विकार उसे अन्तर्मनकी गहराइयों तक व्याकुल बना देता है। इसी प्रकार वह जब-जब किसी मादक पदार्थका सेवन करता है तब-तब औरोंकी सुख-शांतिके लिए तो खतरा पैदा कर ही देता है, स्वयं अपने आपको भी शनैःशनैः उस मादक पदार्थका गुलाम बना लेता है और मनकी मल्लिकयत खो बैठता है और परिणामतः दुखी ही होता है। दुराचरणका जीवन जीनेवाला व्यक्ति स्वयं अपने अन्तर्मनकी गहराइयों तक सदा दुखी ही बना रहता है, बेचैन ही बना रहता है। यह नैसर्गिक नियम है।

अतः दुराचरण से बचना चाहिए, अपने भले के लिए भी और समाजके अन्य प्राणियोंके भलेके लिए भी। परन्तु दुराचरणसे बचनेके लिए मनको वशमें करनेका कोई अभ्यास करना अत्यंत आवश्यक है। यह अभ्यास बिना किसी सांप्रदायिक आलंबनका आधार लिए हुए किया जाय तो मैला नहीं हो पाता। उस पर कभी कोई सांप्रदायिक विष नहीं

धम्म वाणी

सुत्वा तथा ये न करोन्ति बाला,
चरन्ति दुक्खेसु पुनप्पुनं ते ॥
... ...
सुत्वा तथा ये पटिपत्तियुत्ता,
भवन्ति ते सच्चदसा सपञ्ञा ॥

अपदान – १३७/१३८.

जो व्यक्ति धर्म के मूलभूत सिद्धांतोंको सुनते हैं पर उनका पालन नहीं करते, वह बार-बार दुःखोंके जीवनमें से ही गुजरते हैं।

जो सुनते हैं और उनका प्रतिपादन करते हैं, वही सत्यदर्शी प्रज्ञावान होते हैं।

बढ़ पाता। अतः अपने देशके कुछ समझदार लोगोंने अपने ही सांसका आलंबन लेकर मनको एकाग्र करनेका और उसे वशमें करनेका अभ्यास करना सिखाया। सांसके साथ कोई शब्द नहीं, कोई नाम नहीं, कोई मंत्र नहीं। सांसके साथ कोई रूप नहीं, कोई आकृति नहीं। शुद्ध सांस के नैसर्गिक आवा-गमनके प्रति सजग रहता हुआ साधक अपने मनको वशमें करनेका अभ्यास करता है। मन को वशमें करनेके साथ उसे निर्मल करनेका भी काम शुरू हो जाता है। क्योंकि सांस का मनसे और मनके विकारोंसे गहरा संबंध है। ऐसा अभ्यास करनेवाला व्यक्ति संप्रदायसे नही बंधता। शब्द, मंत्र, नाम सांप्रदायिक हो सकते हैं। रूप, आकृति सांप्रदायिक हो सकते हैं। पर सांस तो सार्वजनीन है, नैसर्गिक है। किसी एक संप्रदायसे जुड़ा हुआ नहीं।

मनको गहराइयों तक विकार-विमुक्त करनेके लिए साधकको आगे बढ़ना होता है। साढ़े तीन हाथ की कायाके भीतर होनेवाले भौतिक और मानसिक प्रपंचोंको एक शोधकर्ता वैज्ञानिक की तरह साक्षीभावसे देखना होता है। ऐसा करता है तो बहुत शीघ्र समझने लगता है कि मनोविकारोंका केवल मनसे ही नहीं, शरीरसे भी गहरा संबंध है। मन पर जागा हुआ हर विकार शरीर पर संवेदना पैदा करता है। शरीर और मनके इस प्रपंचको साक्षीभावसे देखते-देखते साधक मनोविकार पैदा करके अंध प्रतिक्रिया करनेकी अपनी पुरानी आदतके बाहर निकलता है। तटस्थभावमें, समताभावमें पुष्ट होता है। अन्तर्मनकी गहराइयोंमें जहाँ विकारोंका उद्गम होता है वहीं साक्षीभावसे देखकर उनका संवर करता है तो नए विकार पैदा नहीं होने पाते। कभी असावधानीसे पैदा हो भी जांय तो पानीकी लकीर बन कर रह जाते हैं। अथवा अधिकसे अधिक बालूकी लकीर बनकर रह जाते हैं। पत्थर पर गहरी लकीर जैसे बन ही नहीं पाते।

इस अभ्यास से धीरे-धीरे मानसका बिगड़ा हुआ स्वभाव अपने आप बदलने लगता है। पुराने विकारोंका संग्रह क्षीण होने लगता है तो मानस स्वतः गहराइयों तक निर्मल होने लगता है। राग छूटने लगता है, द्वेष छूटने लगता है, मोह छूटने लगता है। इन पर आधारित अन्य सभी विकार क्षीण होने लगते हैं। मानस जितना-जितना विकार विमुक्त होता है, स्वभावतः उतना-उतना निर्मल होता है और उतना-उतना ही दुःख-विमुक्त होता जाता है। क्योंकि हर विकार दुखःका उद्गम है, दुःख ही पैदा करता है। मानव जब स्वयं दुखी रहता है तो औरोंको भी दुःख ही बांटता है। स्वयं भीतर सुख-शांति अनुभव करे तो औरोंकी सुख-शांतिमें सहायक बनता है।

अपने शरीर और शरीर पर उत्पन्न होनेवाली संवेदनाओंको साक्षीभाव से देखनेका अभ्यास तथा अपने ही मन और मन पर उत्पन्न होनेवाले विकार और उनकी वजहसे शरीर पर उत्पन्न होनेवाली संवेदनाओंको साक्षीभावसे देखनेका अभ्यास साधकको किसी भी संप्रदायमें नहीं बांधता। उसे किसी संप्रदायमें दीक्षित होनेके लिए मजबूर नहीं करता। यह सब सार्वजनीन, नैसर्गिक आलंबन हैं; सांप्रदायिक नहीं। अतः हर संप्रदायवालोंको सहज सुलभ हैं। सबके लिए सहज ग्रहण कर सकने योग्य हैं।

विपश्यना द्वारा अपने आपको साक्षीभावसे देखनेसे जैसे-जैसे मानस विकारोंसे विमुक्त होने लगता है वैसे वैसे उसे सद्गुणसे भरना सहज हो जाता है। मैत्री, करुणा, प्यार, सद्भावना निर्मल मनके नैसर्गिक गुण होते हैं।

द्वेष, दुर्भावनाएँ दूर हों और स्नेह सद्भावनाएँ बढ़ने लगें तो भले हिन्दू अपने आप को हिन्दू कहे, बौद्ध बौद्ध कहे, जैन जैन कहे, सिक्ख सिक्ख कहे, मुसलमान मुसलमान कहे, ईसाई ईसाई कहे; इससे क्या अन्तर पड़ता हैं? हिन्दू हो तो अच्छा हिन्दू बन जायेगा। मुसलमान हो तो अच्छा मुसलमान। जैन हो तो अच्छा जैन। बौद्ध हो तो अच्छा बौद्ध। सिक्ख हो तो अच्छा सिक्ख और ईसाई हो तो अच्छा ईसाई बन ही जायेगा। क्योंकि अच्छा आदमी जो बन गया। सार्वजनीन धर्म हमें अच्छा आदमी बनाता है। क्योंकि मानसकी दुर्भावना दूर करता है। उसमें सद्भावना पैदा करता है। इसके विपरीत संप्रदाय हमें उलझा सकता हैं क्योंकि उसके लिए सद्भावना पैदा करना अनिवार्य नहीं है। जबकि धर्म के लिए यह नितांत अनिवार्य है। अगर मनकी दुर्भावना दूर नहीं हुई, उसमें सद्भावना नहीं जागी तो भी एक संप्रदायवादी व्यक्ति बड़े गर्व के साथ अपने आपको अमुक संप्रदायवाला घोषित करता है और इसमें बड़ा संतोष मानता है। वह सारे जीवन इस गर्व के नशेमें अपने आपको भरमाए रख सकता है। परन्तु जिसके लिए धर्म प्रमुख है वह मनको विकार-विहीन बनाए बिना, उसे सद्गुण संपन्न किए बिना कभी अपने आपको धर्मिष्ठ नहीं मान सकता। क्योंकि उसके लिए केवल यही बात प्रमुख है, यही प्रधान है।

हर संप्रदायवादी, वह चाहे जिस संप्रदायका हो, धर्म की इन मूलभूत बातोंकी दुहाई तो अवश्य देगा। यही कहेगा कि हम भी यही मानते हैं कि शील-सदाचारका पालन करना चाहिए, मनको वशमें रखना चाहिए, दुर्गुणोंसे विमुक्त कर मनको सद्गुणोंसे भरना चाहिए। यह "करना चाहिए," यह "करना चाहिए," यों सिद्धांतों को खूब स्वीकारेगा। पर "करेगा" नहीं। क्योंकि कैसे करे? यह जानता ही नहीं। जाननेकी जरूरत भी नहीं समझता। क्योंकि बिना किए ही उसका काम चल रहा हैं। धर्म के नाम पर हर संप्रदायवादी औरोंको तो धोखा देता ही है, अपने आपको भी धोखा देते रहता है।

लेकिन जो शुद्ध धर्मवादी है वह संप्रदायके इस धोखेमें नहीं उलझता। वह इस बातको खूब समझता है कि धर्म को धारण करना होगा। धर्म की मूलभूत बातोंको केवल मान लेने से काम नहीं चलेगा। अतः धारण कैसे करें? इसे जाननेकी जिज्ञासा उसके मनमें अवश्य जागेगी। इस जिज्ञासाके आधार पर जिसने "कैसे करें?" यह जान लिया और "करने" के प्रयत्न में लग गया वह सही मानेमें मंगल के रास्ते पड़ गया। कल्याण के रास्ते पड गया।

साधको! विपश्यना हमें "धर्म धारण कैसे करें?" यही सिखाती है। अतः हमारे लिए सही मंगलका मार्ग प्रशस्त करती है। आओ, धर्मको कर्मकांडोंके आडम्बरों से दूर रखते हुए, धर्म को व्रत-उपवासों के मिथ्या उपायोंसे दूर रखते हुए, दार्शनिक मान्यताओंके जंजालोंसे मुक्त रखते हुए, सांप्रदायिक बेड़ियोंके बंधनोंसे स्वच्छन्द रखते हुए उसके शील, समाधि और प्रज्ञाके मंगल-स्वरूपको स्वयं धारण करें और सही मानेमें अपना मंगल- कल्याण साध लें।

कल्याण मित्र, स. ना. गो.

साधकोंके उद्गार

इन्दौर से मानवमुनि लिखते हैं, "आपके आत्मीय आशिर्वाद से प्रतिदिन ध्यानका क्रम नियमित प्रातः एक घंटा तो होता ही है। रात्रिको सोते वक्त भी १५ मिनिट होता है। जीवनका वास्तविक आनंद व शांति अन्तरमुखमें ही, ध्यान-साधना में ही होगी। किसी भी प्रकारका (बाहरी) आलंबन न हो तो ही उसका वास्तविक लाभ मिल पाता है।"

* * *

दक्षिण भारतका संतान गोपालन लिखता है, "मेरी माता एक अत्यंत धार्मिक प्रवृत्तिवाली भक्त और पिता सदा मौन रहनेवाला अनासक्त। दोनों स्वभावमें एक-दूसरे के विपरीत। मैं भी जीवनके १५ वर्ष तक शांत और एकांतप्रिय ही रहा। कई दिनों तक लगातार चलनेवाले पूजा, पाठ, भजन-कीर्तन और कर्मकांडोंका माहोल, अनेक लोगोंकी भीड़-भाड़ घर के लिए यह एक स्वाभाविक घटना थी। लेकिन इन सबसे मैं जरा भी प्रभावित नहीं होता था। बल्कि इनसे अलग रहकर यही सोचता था कि ईश्वर भी महज एक कल्पना ही है। किशोर अवस्था के इस महत्वपूर्ण समय में मेरे मनमें जैसे कोई दबी हुई अशांति जाग पड़ी और उसके बाद भावी १४ वर्षों तक अपने मनका गुलाम बना रहा। जीवनमें एक पर एक तरंग उठती और मैं उसमें डूबकर अपने मुँहका स्वाद बिगाड़ लेता और फिर अगली तरंगके लिए तैयार हो जाता। पढ़ने-लिखनेमें बहुत तेज रहा इसलिए हमेशा स्कालरशिप मिलता रहा। आई. आई. टी. से मेकेनिकल इंजीनियरिंग की और मास्टर ऑफ बेजनेस एडमिनिस्ट्रेशन भी किया, लेकिन इससे भी कोई संतोष नहीं हुआ। राजनीतिके क्षेत्रमें उतरा। सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि क्षेत्रोंमें भी सफलता प्राप्त की। लेकिन अंततः जीवन निराशामें ही डूबता गया। प्रेम-प्रसंग और नशे-पतेने भी जीवनमें कोई प्रसन्नता नहीं दी। बल्कि दुःख ही बढ़ाया। एक के बाद एक कंपनियोंमें ऊंचे पद पर काम किया, पर अशांत ही बना रहा। स्वयं अपना व्यापार किया और उसमें आकंठ डूबा रहा। बहुत सफलता भी मिली। लेकिन भीतर की निराशा और कुंठा नहीं गयी। एक दिन पहाड़ोंकी यात्रासे घर लौटा तो एक विचित्र रोग ने धर दबोचा। मैं जमीन पर गिरा तो गिरा ही रह गया, उठ न पाया। यह एक अजीब रोग था और मैंने इसका अनुभव जीवनमें पहली बार किया। अपने आपको इतना असहाय पाकर मानस वास्तविक भयसे भर उठा। मुझे अस्पतालमें भर्ती किया गया। दस दिनों तक खटिया पर आराम के लिए रखा गया और तब मैं अस्पतालके बाहर निकल सका। उसके बाद मैं सीधे यात्रा पर चल पड़ा और श्री रमणाश्रम पहुँचा। वहाँ पहुँचकर मेरे चेतन चित्तको यह विश्वास हुआ कि जीवन यात्राका अंतिम लक्ष्य क्या है ! रमण ने मुझे भीतर तक, गहराई तक हिला दिया। लेकिन इसके बावजूद भी मुझे कोई यह सिखानेवाला नहीं मिला कि उस लक्ष्य तक कैसे जांय ? मुझे किसीने विपश्यनाके बारेमें कुछ नहीं कहा। भीतरसे ही प्रेरणा जागी और मैं चल पड़ा और अकस्मात पहले शिविर में शामिल हो गया। पहले ही शिविरमें मुझे अपने भीतर की गहराई की एक झांकी प्राप्त हुई। मैंने जान लिया कि "कैसे" का उत्तर यहीं है। मन अभी अशांत है, अहंभाव बहुत: प्रबल है। मैं नहीं कह सकता कि मैंने इस विद्या के प्रति पूरी आस्था] पैदा कर ली है। लेकिन मैंने यह निश्चय अवश्य कर लिया है कि आगामी दो वर्षों तक इसी साधना-विधि को पूर्णतया समर्पित होकर इसे आजमा कर देखूंगा।"

* * *

नासिकका एक मुस्लिम साधक चांद दगूमियां सेख लिखता है कि "मुझे पहले बहुत ही क्रोध आता था। अब इस साधनासे बहुत कम हो गया है। और भी विकार कम हुए हैं, मत्सर, माया, आशा-निराशा, भाग-दौड़; अब सब समझमें आने लगा है और सही जीवन जीनेकी कला हाथ लग गयी है।

मैं धर्म के बारेमें बहुतसे मंदिरों और दरगाहों पर जा चुका हूँ। बहुतसे पंडितों और मौलवियोंके भाषण सुन चुका हूँ लेकिन सभी अपने-अपने धर्मके गुणगान गाते हुए दिखायी दिए। सब ने धर्मका अलग-अलग पक्षपाती रूपही दिखाया। बादमें मैंने मानव धर्म में प्रवेश किया। साधना घर पर ही की। लेकिन घर पर साधना नहीं होती थी। कोई बतानेवाला भी नहीं था इसलिए कोई अनुभव नहीं आया। मनमें जो विकार थे वह भी वैसे के वैसे बने रहे। इसके बाद मैंने विपश्यना किया। सचमुच जीवन जीनेकी कला हाथ लग गयी।"

भावी कार्यक्रम

सिद्धपुर (उ. गु.)

शि. क्र. दिनांक संचालक

RS ११. १५-५-८४ से २६-५-८४ तक स. आ. श्री रामसिंहजी

संपर्क : १) सुश्री रमीलाबेन गांधी, द्वारा—योगांजलि केळवणी मंडळ देथली रोड, गणेशपुरा—३८४१५१ ता. सिद्धपुर, फोन : ३११

* २) श्री मोहनलाल केडिया, नं. २०, श्रीनाथ कृपा सोसायटी भैरवनाथ रोड, मणि नगर, अहमदाबाद—३८०००८

* (गुजरात के अन्य शिविरों के लिए भी अहमदाबाद के इस पते पर संपर्क कर सकते हैं।)

पूना - यूनिवर्सिटी

LN २०. १९-५-८४ से ३०-५-८४ तक श्री. ल. ना. राठी

संपर्क : श्री रामचन्द्र राठी, द्वारा - सुदर्शन केमिकल इण्डस्ट्रीज, १६२, वेल्लेस्ली रोड, संगम ब्रिज, पूना - ४११००१. फोन - २७३२३, निवास - २७०८१, तार - "रंगसुन्दर"

शारदाग्राम - मांगरोळ

BG २८. २१-५-८४ से ३१-५-८५ तक डॉ बी. जी. सावला

संपर्क : श्री प्रभुभाई मेहता, द्वारा - महेन्द्र टी हाऊस, नेहरु गेट, मोरबी - ३६३६४१. (सौराष्ट्र) फोन नं. २३४६.

अजराई - आश्रमशाळा

BG २९. २-६-८४ से १२-६-८४ तक डॉ. बी. जी. सावला

संपर्क : १) श्री गुलाबभाई मेहता, द्वारा - आश्रमशाळा, पोस्ट - अजराई - ३९६३६०, ता. गणदेवी, जिला—बलसाड (गुजरात),
२) डॉ. नानुभाई नाइक, सहकारी बैंकके सामने, पो. - अमलसाड - ३९६३१०.

नागपुर

BG ३०. १३-६-८४ ते २४-६-८४ तक डॉ. सावला

... ... १०-९-८४ से २१-९-८४ तक ... ...

संपर्क : श्री सुधीर शाह, C/O विदर्भ व्हेकल्स प्रा. लि. पंचशील स्क्वायर, धनतोली, नागपुर - ४४००१२. फोन : २४४ ७१ ग्राम : व्हेकल्स

भावी कार्यक्रम

इगतपुरी

शि. क्र.	दिनांक	संचालक
BP १९.	२७-४-८४ से ८-५-८४ तक	स. आ. श्री पालीवाल
BP २०.	८-५-८४ से १९-५-८४ ,,	,, ,,
२४७.	२०-५-८४ से ३१-५-८४ तक	पू. गुरुजी (हिन्दी)
ल. शि.	३-६-८४ से ७-६-८४ ,,	स. आ. श्री पालीवाल (केवल पुराने साधकोंके लिए)
BP २१.	७-६-८४ से १८-६-८४ ,,	स. आ. श्री पालीवाल
BP २२.	१८-६-८४ से २९-६-८४ ,,	,,
BP २३.	२९-६-८४ से ९-७-८४ ,,	,,

संपर्क :- व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी, (महाराष्ट्र) पिन : ४२२ ४०३ फोन - इगतपुरी-७६

हैदराबाद

BG-११. २५-६-८४ से ६-७-८४ तक स. आ. डॉ. सावला

संपर्क : १) - श्रीमती ऊषाबेन मेहता, १०-२-२८९/८४, शांतिनगर कालोनी, हैदराबाद-५०००२८ फोन-३०२९१

२) श्री पूरनमल अग्रवाल, C/o होटल राजधानी, सिद्दियम्बर बाजार, हैदराबाद- ५०००००१ फोन-५७५७१. घर : २२४०३५

जयपुर

BG २७. १-५-८४ से १२-५-८४ तक स. आ. डॉ. सावला

BP २४. १४-७-८४ से २५-७-८४ तक स. आ. श्री पालीवाल

शिविर-स्थल एवं संपर्क : विपश्यना केंद्र, धम्मथली, सिसोदिया बाग-गल्ताजी रोड, पो. जयसिंहपुरा खोर, जयपुर-३०३११८(राज.)

स्थानीय संपर्क : श्री श्याम सुंदर मूंदड़ा
द्वारा- मे. श्याम कॉरपोरेशन, मुनोत निवास
रामलल्लजी का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर-३०२ ००१
फोन-६५४१४ घर : ६३३२२ तार : डॉली

सूचना :

१) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) शिविरों के नियम कड़े होते हैं; उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

दूहा धरम रा

या कुदरत री रीत है, यो हि धरम रो सार।
निरबिकार सुखियो र वै, व्याकुल, जग्यां बिकार॥
आकुल व्याकुल ही र वै, जद जद जगै बिकार।
वीं की व्याकुलता छुटै, जीं का छुटै बिकार॥
धरम न कीं कै बाप को, जो धारै सो पाय।
पाप ताप वीं का धुलै, धरम गंग जो न्हाय॥
सम्प्रदाय प्यारो लगै, धरम न धारै कोय।
सम्प्रदाय मँह सुख कठै ? धरम धार सुख होय॥
सै कूंआ मँह एक सी, पड़ी मोह की भंग।
सम्प्रदाय की बारुणी, सैं का बिगड़्या ढंग॥
द्वेस द्रोह सैं का मिटै, प्यार परस्पर होय!
सुद्ध धरम फिर सूं जगै, जन जन मंगल होय!!

दोहे धर्म के

धर्म न हिन्दू बौद्ध है, धर्म न मुस्लिम जैन।
धर्म चित्त की शुद्धता, धर्म शांति सुख चैन॥
धरम धरम तो सब कहें, धरम न समझे कोय।
निर्मल मनका आचरण, सत्य धरम है सोय॥
कुदरत का कानून है, सब पर लागू होय।
मैले मन दुखिया रहे, निर्मल सुखिया होय॥
धर्म न जाति विशेष का, धर्म अनंत असीम।
गन्ना मीठा ही लगे, खारा सब को नीम॥
हिन्दू मुस्लिम बौद्ध हो, सिक्ख इसाई जैन।
जो भी मन मैला करे, वो ही हो बेचैन॥
संप्रदाय ना धर्म है, धर्म न बने दिवार।
धर्म सिखाए एकता, धर्म सिखाए प्यार॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष : ८६ ●
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१.● वार्षिक शुल्क रु. १०/-, आजीवन शुल्क रु. १००/-

"विपश्यना" 4/84
पो. रजि. नं. NS(M) 16/84

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To